कथात्मक गद्य की विशिष्ट भंगिमा

जय प्रकाश

।। एक ।।

'आकाश कमरे के भीतर आए -- बादलअॅ और चिड़ियअॅ सहित / बादल आएँ तो नमी ले आएँ और चिड़ियाँ आएँ / तो पंखअॅ में रखकर हवा ले आएँ / हवा आए तो साथ-साथ पेड़ और पेड़अॅ का हरापन भी ले आए / पेड़ आएँ तो अपनी जड़अॅ में मिट्टी ले आएँ / और कमरा उस सअॅधी महक से भर जाए / जो सूखी धरती पर पहली बारिश में धरती देती है / एक दृश्य के साथ, पीछे-पीछे आएँगे न जाने कितने दृश्य / और स्त्री का कमरा दृश्यअॅ से जगमग हो जाएगा / दृश्यअॅ से जगमग कमरे की दीवारें भी / दृश्य में शामिल हो जाएँगी / और तब उनके पार जाना संभव_होगा / बंद दरवाज़े चाहे सदियअॅ तक बंद रहें / दृश्य में शामिल दीवार को पार कर स्त्री कमरे के बाहर के दृश्य तक जा सकेगी / बाहर के दृश्य रात में बदल जायेंगे / रात अगर चांदी की हुई तो दृश्य में चांदी चढ़ी होगी / और रात गहरी होगी तो दृश्य उसकी गहराई में डूबे हुए हअॅगे / डूबे हुए दृश्यअॅ को निकालना थोड़ा मुश्किल हो सकता है / पता नहीं वे कितने गहरे डूबे हअॅ / स्त्री डुबकी लगाएगी / और साँस-भर दृश्य,आँखअॅ में समेट कर ऊपर आ जाएगी। `

ये पंक्तियाँ किसी कवि की रचना नहीं, बल्कि कथाकार आनंद हर्षुल की कहानी का एक पूरा अनुच्छेद है, जो स्पष्टतः एक तरह की काव्यात्मकता का आभास कराता है। इन पंक्तियअॅ में कविता की-सी अनुभूतिपरकता और संवेदनशीलता है। यहाँ प्रयुक्त भाषा प्रचलित कथा-भाषा से बिल्कुल अलग और कहानी के पाठक के लिए प्रायः अनपेक्षित और अनभ्यस्त भाषा जान पड़ती है। आनंद की कहानियअॅ में कथात्मक विवरणअॅ के बीच ऐसे अनेक स्थल मिलते हैं, जहां भाषा कथा-चरित्रअॅ और उनकी मनःस्थितियअॅ का सूक्ष्म निरूपण करती है। इस प्रक्रिया में उसके भीतर सर्जनात्मक बुनावट की एक अनूठी प्रक्रिया घटित होती है, जो इस तरह की काव्यात्मकता को सहज ही सम्भव करती है। यह आनंद की विशिष्ट कथा-शैली है। सूक्ष्म विवरणअॅ और एक ख़ास क़िस्म की कल्प-क्रीड़ा में अनूठा वास्तव-लोक गढ़ने में समर्थ यह कथा-भाषा जीवन-यथार्थ को नए ढंग से देखने की युक्ति का नतीजा मालूम पड़ती है। यह कहानी के गद्य को वृत्तांत के सपाट विस्तार में नहीं, बल्कि स्थितियअॅ के सघन विवरणअॅ में रचती है। ऊपर से यह अंतर्मुख, अमूर्त्तनधर्मी और स्वैरगामी नज़र आती है, मगर यथार्थ की अंदरूनी तहअॅ को भेद कर उसके सूक्ष्मतर रेशअॅ को अंतर्वीक्षण के ज़रिए खोल सकने में यह पूरी तरह समर्थ प्रतीत होती है। इसका प्रभाव इतना संक्रामक है कि पाठक इससे न तो बच सकता है, न ही उसे नज़रअंदाज़ कर पाता है। कथात्मक गद्य में भाषा-व्यवहार की ऐसी केन्द्रीयता और विशिष्टता अन्यत्र दुर्लभ है, ख़ास तौर पर आजकल लिखी जा रही कहानियअॅ के सन्दर्भ में इसकी ऐन्द्रिकता और अंनुभव-सघनता फ़ौरन ध्यान खींचती है। ऐसी विशिष्टता और ऐन्द्रिकता कभी रेणु, निर्मल वर्मा या विनोद कुमार शुक्ल की कहानियअॅ में देखी गयी थी, जहाँ कथा-भाषा न सिर्फ़ पाठक को आविष्ट या मुग्ध करती थी, बल्कि वह अक्सर उसके इंद्रजाल की गिरफ़्त में आ जाता था। आनंद की कहानियअॅ में भाषा की विलक्षण सृजनात्मकता और उसके कल्प-लोक का यह पुनर्वास अत्यंत सुखद है।

आनंद हर्षुल की चर्चा अक्सर उनकी कहानियअॅ के अनूठे शिल्प और संवेदनशील भाषा को लेकर की जाती है। कहानी की प्रविधि को लेकर अतिरिक्त सजगता और भाषा के सौष्ठवपूर्ण सॅदर्य-लोक में कथ्य को ढालने की कलात्मक दक्षता उनकी कहानियअॅ में अनिवार्य गुणधर्म की तरह मौजूद है। यथार्थ के साथ रोमांस के जिस सर्जनात्मक दुस्साहस के लिए आनंद हर्षुल जाने जाते हैं, वह उनके गद्य के अनूठेपन और उसकी विशिष्ट कथन-भंगिमा में प्रकट-प्रत्यक्ष है । यह ऐसा गद्य है जो इन दिनअॅ प्रचलित कथात्मक गद्य की स्थूल रूढ़ियअॅ -- विवरणात्मकता, वृत्तांत के प्रायः एकरैखिक विन्यास और यथार्थ की निपट समाजशास्त्रीय भंगिमा आदि -- के बरअक़्स किंचित स्वैरमूलक, संवेदनात्मक और स्मृतिबहुल रूप ग्रहण कर लेता है। इस रूप में यह इन दिनअॅ लिखी जा रही कहानी के जाने-पहचाने गद्य का प्रतिलोम जान पड़ता है। ऐसा नहीं है कि आनंद की कहानियअॅ में घटनाएँ या विवरण नहीं हैं। लेकिन ये कहानियाँ सिर्फ़ घटनात्मक वास्तविकता और उसके स्थूल विवरणअॅ पर निर्भर होतीं तो कोरे वृत्तांत में सिमट कर रह जातीं। आनंद संवेदना

की गहराइयअँ तक जाते हैं और सूक्ष्म विवरणअँ में उसे सिरजते हैं। उनकी कहानियाँ निपट क़िस्सागोई के अंदाज़ में कथ्य के ब्यौरेवार विस्तार में जाने की बजाए संवेदना की बारीक़ी को पकड़ती हैं। इसलिए मामूली-सी घटना या कोई विडंबनामूलक जीवन-स्थिति अपनी प्रकट वास्तविकता से ऊपर उठकर धीरे-धीरे आख्यान के ऐंद्रजालिक संसार में प्रवेश करती है और कथाकार उसकी यथार्थता को किंचित स्वैरभाव से तल्लीनतापूर्वक रचने लगता है। यह कहानी की वह कीमियागिरी है जो 'साधारण' को 'विलक्षण' में बदल देती है। आनंद कथावस्तु के यथार्थवादी प्रत्यक्षीकरण में नहीं, बल्कि यथार्थ के स्वैरमूलक कायांतरण में कहानी संभव करते हैं। इसलिए ज़रूरत पड़ने पर आनंद कहानी के आख्यान को फ़ैंटेसी के भीतर संघटित करने का जोखिम भी उठाते हैं,जहां यथार्थ की बनावट पूरी तरह से बदल जाती है। स्पष्ट है कि उनके यहाँ यथार्थ नहीं, यथार्थ की बुनावट में कहानी आकार लेती है। वे यथार्थ से ज़्यादा यथार्थ के विन्यास पर बल देते हैं। कहने की ज़रूरत नहीं कि यहाँ कहानी की ख़ास तरह की 'बुनावट' ही उसकी पहचान बन जाती है और वही दरअसल पाठक का ध्यान खींचती है।

।। दो ।।

आनंद कहानी की अंतर्वस्तु को सामाजिकता के वाचाल मुहावरअँ में पकड़ने की लोकप्रिय प्रविधि से सतर्कतापूर्वक परहेज़ करते हैं। यथार्थ की अन्तर्ध्वनियअँ को वे एकाग्रचित्त होकर सुनते हैं और उसकी आंतरिक विडंबनाओं पर सावधानी से उँगली रखते हैं। सच कहा जाए तो वे कहीं पहुँचने की आपाधापी में नहीं होते। कहानी उनके तईं जीवन-अनुभव के अन्तर्गुम्फनअँ को आहिस्ता-आहिस्ता खोलने के उत्कंठ प्रयत्न में निर्मित होती है। वह दरअसल धैर्य के साथ यथार्थ को बरतने की कला है।

आनंद हर्षुल की कहानियअँ में स्याह-सफ़ेद का प्रचलित वर्गीकरण व्यर्थ हो जाता है। उनके कथा-संसार में अनेक रंगअँ और रेखाओं की निर्बाध आवाजाही है। मूर्त्त और अमूर्त्त, वास्तविकता और स्मृति, यथार्थ और कल्पना, प्रत्यक्ष और अंतर्भूत एक दूसरे में मानो घुल-मिल जाते हैं। सच कहा जाए तो उनकी कथा-प्रविधि की यही विशेषता सबसे पहले ध्यान आकृष्ट करती है कि जड़ वस्तुएँ भी उनके यहाँ सहसा सजीव हो उठती हैं और मानवीय क्रिया-व्यापार में सहज भाव से शामिल हो जाती हैं। पेड़ उनके यहाँ देखता है, बोलता है, सोचता है। रावण की विशाल प्रस्तर मूर्त्ति के पंजे पर लड़की के बैठने से रावण को गुदगुदी होती है। सूना मकान पानी की टंकी की ओर देखता है। पतंग एक बच्चे की इच्छा से आकाश में उड़ती, और अपना संतुलन साध लेती है। ट्रेन की खिड़की के पार भागते दृश्य भी बेटी के साथ यहाँ मुस्कुराते हैं, उदास हो जाते हैं। ऐसे अनेक कल्पनाजन्य कार्यकलाप और स्वैरमूलक अंतर्वीक्षण उनकी कहानियअँ में बार-बार प्रकट होते हैं।

जड़ वस्तुओं के निपट स्थूल भौतिक संसार में मानवीय ऐन्द्रिकता का यह विस्तार कुछ-कुछ अतिमानवीय और अतिलौकिक जान पड़ता है। मगर यह अतियथार्थमूलक कथाशिल्प का नवाचारी प्रयोग-मात्र नहीं है। यह अनायास ही कथा की उस आदिम और सार्वभौमिक शैली की स्मृतियाँ जगा देता है, जो जड़ और चेतन में किसी तात्त्विक भेद से इंकार करती है। यह सार्वभौमिक कथा-शैली मनुष्य, पशु-पक्षी और पेड़-पौधे सबको संवाद और साहचर्य का एक साझा स्पेस देती है; जहाँ पशु-पक्षी मनुष्य की बोली बोलते हैं, मनुष्य देवलोक में जा पहुँचता है, देवता पत्थर में प्रवेश कर जाते हैं, या किसी राक्षस के प्राण सुग्गे में बसते हैं। अतिलौकिक और प्रत्यक्ष भौतिक संसार का एक-दूसरे में विलय यहाँ सहज सम्भव है। आनंद की कहानियाँ लोककथा, प्राचीन फ़ेबल या रूपक-कथाओं के शिल्प की याद दिलाती हैं। इस कालातीत कथा-शैली का उनके रचना-संसार में पुनरुत्थान, सच कहा जाए तो, उसकी सार्वकालिक उपयोगिता की पुष्टि करता है। समकालीन आख्यान में उसका प्रयोग विस्मय के रोमांटिक उन्मेष में चरितार्थ हो सकता है,जिसका आज के कथा-साहित्य में नितांत अभाव है। आनंद की खूबी है कि वे इसे जादुई यथार्थवाद के प्रचलित फ़ैशन में अपघटित नहीं होने देते। इसलिए कि उनके यहाँ जादू कम और यथार्थ ज़्यादा है। दूसरे शब्दअँ में कहें तो यथार्थ यहाँ अपनी समूची यथार्थता के साथ -- बिलकुल ठोस और ऐन्द्रिक रूप में प्रकट होता है, किन्तु उसका प्रभाव लगभग जादू की तरह का होता है। यही कारण है कि इन कहानियअँ को पढ़ते हुए हम चकित होते हैं, मुग्ध होते हैं, कथा-भाषा की ऐंद्रजालिकता और उसकी विलक्षण कल्पनाशीलता पर विस्मित होते हैं। इनका प्रभाव कहानी के जाने-पहचाने यथार्थवादी प्रारूप के प्रभाव से बिल्कुल अलग है। यह प्रविधि वृत्तान्तपरक कथा-संरचना की बजाए काव्यात्मक संरचना के क़रीब जान पड़ती है।

इस कथा-प्रविधि को समझने के लिए 'कैमरे की आँख' कहानी पर ग़ौर किया जा सकता है। इसकी कथावस्तु बेहद सामान्य है। यह कहानी आधुनिक विकास की उस विडंबना को उजागर करती है जिसके चलते एक तरफ़

समाज का एक तबका लगातार तरक़्क़ी की सीढ़ियाँ चढ़ रहा है, जबकि दूसरा तबका बुनियादी ज़रूरत की चीज़ॲ, यानी शिक्षा और स्वास्थ्य या जीवनयापन की न्यूनतम सुविधा, के अभाव में धीरे-धीरे दम तोड़ रहा है। हाशिए के ये लोग नरक से भी बदतर ज़िंदगी जी रहे हैं, लेकिन दूसरी तरफ़ सुखी-संपन्न लोग खा-पी कर अघाए हुए हैं। यह कितना शर्मनाक है कि एक ग़रीब आदिवासी का अभावग्रस्त जीवन समाज के संपन्न वर्ग के लोगॲ के लिए कुतूहल और कौतुक की वस्तु है। कैमरे की आँख से देखी इस जीवन की कठोर वास्तविकता को कलात्मक और प्रदर्शनीय बनाकर प्रस्तुत करना एक क्रूर मज़ाक है। आनंद हर्षुल आदिवासी-जीवन के यथार्थ की इस विडंबना की तरफ़ संकेत करते हैं कि दारुण जीवन स्थितियॲ में जीने वाले आदिवासी तथाकथित सभ्य समाज के आनंद और मनोविनोद के स्रोत हैं।

'कैमरे की आँख' कहानी भारतीय समाज में आधुनिक विकास के अंतर्विरोधॲ का रूपक बन जाती है। इसके केंद्र में एक बूढ़ा आदिवासी है, जो अपने बेटे और दो नन्हें पोतॲ को खो कर अपनी स्त्री के साथ दारुण बुढ़ापा काटने के लिए अभिशप्त है। दूसरी तरफ़ फ़िल्मकार की प्रोडक्शन टीम है, जो अनायास ही उसकी जीवन-कथा को कैमरे में क़ैद कर लेती है। बूढ़े की जीवन-कथा छोटी-सी है। उसके पोते और बेटा भूख से दम तोड़ चुके हैं। सेमल के पेड़ॲ में उनकी स्मृतियॲ को आरोपित कर मानो बूढ़े ने उन्हें पुनर्जीवित कर लिया है। स्मृति और यथार्थ की जिस मिली-जुली दुनिया में बूढ़ा रहता है, उसमें उसका पूरा कुटुंब बसा है। उस दुनिया में वह बेटे और पोतॲ को प्यार करता है, उनसे बातें करता है, पर इस दुनिया में वह उनकी स्मृतियॲ और अपने आंसुओं में डूबा रहता है। वे मर चुके हैं लेकिन बूढ़े के लिए वे सेमल के पेड़ॲ में जीवित हैं। यह आदिवासियॲ की वह दुनिया है, जिसमें मूर्त्त और अमूर्त्त, जीवित और मृत, प्रकृति और मनुष्य का अंतर मिट जाता है, जहां मृतक की आत्मा किसी जीवित देह में अथवा किसी स्थूल पिंड में अवतरित होती है, चाहे वह किसी पशु या पक्षी की देह हो या फिर सेमल की वृक्ष-काया। आदिवासी-समाज के आदिम विश्वास उन्हें आत्मिक सुरक्षा देते हैं। अपनी संतानॲ की भौतिक उपस्थिति से वंचित बूढ़ा इस अभाव की भरपाई के लिए उनकी स्मृति-काया को सँजोने का जतन करता है। यह एक तरह की आध्यात्मिक क्षतिपूर्त्ति है, जो आदिवासी-जीवन में भौतिक वंचना का सामना करने की स्वतःस्फूर्त्त शक्ति पैदा करती है। बल्कि सच तो यह है कि वहाँ भौतिक वंचना का एहसास दूर-दूर तक नहीं है। वह प्रकृत जीवन है जिसमें भौतिक और अभौतिक का अंतर मिट जाता है और एक सार्वभौम लौकिकता में उनका अलौकिक संसार एक ख़ास तरह के समग्रता-बोध के दायरे के भीतर स्वायत्त होता है।

आनंद यथार्थ के अंतःस्वर को एकाग्रचित्त होकर सुनते हैं। इसलिए भी वे जान पाते हैं कि आदिवासी-जीवन की वास्तविकता को उनके मिथक-संसार से अलग कर निपट प्रत्यक्ष घटनात्मकता के स्तर पर देखना उचित नहीं होगा। यही वजह है कि 'कैमरे की आँख' चालू अर्थ में यथार्थवादी क़िस्म की कहानी नहीं है। इसमें आदिवासी-जीवन की वास्तविकता उसकी मिथक-चेतना के साथ अनुस्यूत है। इसलिए जड़ वस्तुएँ यहाँ सजीव व्यवहार करने लगती हैं,और मानवीय चेतना तथा उसके नित्य क्रिया-व्यापार में सहज भाव से शामिल हो जाती हैं। सेमल का पेड़ बूढ़े की वेदना का अवलंब है, वह कहानी भी दुनिया का पेड़-मात्र नहीं है। बूढ़े की आत्मा की व्याकुल पुकार को मानो समूची सृष्टि में और कोई नहीं, सिर्फ़ सेमल का पेड़ सुन रहा है, जो अब केवल पेड़ नहीं रह गया, बूढ़े की संतान बन गया है।

यह कहानी एक मार्मिक सचाई की तरफ इशारा करती है कि वंचित वर्ग की व्यथा को और उसकी अंतर्वेदना की गहराई को समझ पाने में आधुनिक जीवन-बोध, उसके उपकरण और कला-माध्यम पूरी तरह से अक्षम हैं। 'कैमरे की आँख' बूढ़े के आँसुओं से धुँधली पड़ जाती है । इसलिए कथाकार कहानी के अंत में यह अर्थगर्भित टिप्पणी करता है -- 'इस फ़िल्म का अंत कैमरे के भीतर नहीं था।'

मानवेतर सत्ता में मानवीय बोध के आरोपण का एक अन्य उदहारण 'टीला' कहानी में मिलता है। यहाँ भी प्रकृति और मनुष्य की अभिन्नता का आदिम बोध आख्यान के स्वरूप को निर्धारित करता है। आवेश में अपनी स्त्री की हत्या के बाद पश्चात्ताप में डूबा कथानायक गुहार लगाता है कि उसे कोई पुनर्जीवित कर दे। वह सल्फी के पेड़ से, पगडण्डी से, ईश्वर की तरह दिखती विशाल पहाड़ी से, नदी से, चिड़ियॲ से, उगते सूरज से, धरती से, सबसे पुकार करता है कि उसकी औरत 'मरी न हो, मरी हो तो उसे जीवित कर दे।' आखिर में वह टीले से कहता है -- 'मरी हो तो उसे जीवित करो।' देर तक इंतज़ार करने के बाद अंततः वह टीले पर बैठ जाता है। कथाकार की टिप्पणी है कि वह 'अब तक बैठा हुआ है। कल जब पहाड़ी से लोग उतरेंगे तो टीले पर एक छोटे टीले को बैठा देखेंगे।' आदिवासी-जीवन में मनुष्य की आदिम स्मृतियॲ में मौजूद हिंसक वृत्तियॲ के बावजूद उसके भीतर हिलोरें मारती मानवीय संवेदना प्रकृति के साथ उसके सहज तादात्म्य में जिस तरह चरितार्थ होती है, उसे आनंद ने गहरी अंतर्दृष्टि और कलात्मकता के साथ पकड़ा है। यह प्रकृति के मानवीकरण-जैसी सरल

काव्यात्मक युक्ति का इस्तेमाल करने की बजाए मानव के प्रकृतिकरण की आदिमयुगीन कथात्मक पद्धति का रचनात्मक प्रयोग है। परमानन्द श्रीवास्तव ने इसे उचित ही 'महाकाव्यात्मक रोमांस' कहा है और 'लोककथा में काम आने वाले खंड-खंड कथासूत्र' से उसे जोड़ा है। वे आनंद की कहानियॅ के शीर्षकॅ की अर्थ-व्यंजना पर ग़ौर करते हैं और उनके बीच की क्रम-विश्रृंखलता को कथा-पद्धति की विशेषता निरूपित करते हुए कहते हैं कि 'क्रम आनंद हर्षुल के लिए प्रकृति से बाहर की चीज़ है। घर और प्रकृति, प्रकृति और घर, के बीच ऐसी अविराम आवाजाही जैसी यहाँ है, अन्यत्र विरल है। ख़ुद कहानी में कथानक का कोई एकरेखीय सपाट विन्यास यहाँ नहीं दिखता।'

कहने की आवश्यकता नहीं कि आनंद की कहानियॅ में वृत्तांत की उच्चावच गति एक नई तरह की कथा-संरचना में चरितार्थ होती है। यथार्थ की यथार्थता यहाँ सघन ऐंद्रिकता में प्रकट हुई है, प्रत्यक्ष और स्थूल घटनात्मकता में नहीं। स्पष्ट अनुभव किया जा सकता है कि इन कहानियॅ के पात्र आख्यान की पालकी ढोने वाले महज़ आज्ञाकारी सेवक नहीं हैं, बल्कि अनुभव को गहरी संवेदना के साथ जीने वाले और उसके ताप में पक कर आए जीवंत चरित्र हैं। वे जीवन को महसूसते और सोचते हैं। कथाकार उनके महसूसने और सोचने को कुशलता से शब्द देता है। वे कथाकार की उँगलियॅ पर नाचने वाली निरीह कठपुतलियाँ भी नहीं हैं, बल्कि इसके विपरीत उनकी ऐन्द्रिक संवेदनशीलता इतनी प्रबल और ऐसी उत्कट है कि वे कथाकार की सृजन-चेतना को आविष्ट कर मानो उसे निर्देशित करने लगते हैं। ऐसा कम ही देखने को मिलता है कि चरित्र स्वयं लेखक को रास्ता बताए। कहानी में तो यह नितांत विरल है, हालाँकि एक विधा के तौर पर उसमें इसके अवसर भी अधिक नहीं होते कि लेखक अपने कथा-चरित्र में बिलकुल डूब जाए और दोनॅ एक सुर में सोचने-महसूसने लगें। फिर भी आनंद अपनी कहानियॅ में बहुत हद तक इसे सम्भव करते हैं। आज की कहानी में लेखक और चरित्र की ऐसी एकात्मता दुर्लभ है।

।। तीन ।।

'

1980 के बाद के दौर में जब आनंद हर्षुल ने लिखना आरंभ किया था, बहुसँख्यक कहानीकार स्थूल सामाजिक संघर्ष के वृत्तांतॅ को अपनी कहानियॅ में अत्यंत मुखर ढंग से अभिव्यक्त कर रहे थे। सांप्रदायिक विद्वेष, वर्गीय अंतर्विरोध, आर्थिक-सामाजिक वैषम्य और जातिगत संघर्ष के शोरगुल से भरे सामाजिक यथार्थ, और उससे बने कहानी-परिदृश्य, में आनंद हर्षुल ने अपना एक संयत, अमुखर और बेचैन मुहावरा विकसित किया, जिसमें जीवन-द्वन्द्व धीमी-प्रशांत अंतःलय में साकार होता था। उन्हॅने मानवीय संघर्ष और उसकी संवेदना को प्रतिवाद की वाचाल मुद्राओं से नहीं, पीड़ित मनुष्यता के जीवन में उपजे सघन अनुभव-खण्डॅ से अर्जित किया और सर्वथा नई भंगिमा में उसे प्रस्तुत किया।

उनकी प्रारंभिक कहानियॅ में ताक़तवर और कमज़ोर के बीच का द्वैत बराबर सक्रिय है। 1997 में प्रकाशित उनके पहले कहानी-संग्रह 'बैठे हुए हाथी के भीतर लड़का' में इसे सहज ही लक्ष्य किया जा सकता है। यह द्वैत हालाँकि उस दौर के क्रान्तिकारी आशावाद की चिंगारी से सुलगते परिदृश्य की लाक्षणिक पहचान बन चुका था, मगर उससे किसी हद तक प्रेरित और प्रभावित होने के बावजूद आनंद उसके दबाव से बिलकुल मुक्त थे। यह ऐसा दबाव है जो अपने समय के वर्चस्वशाली मुहावरे को अपनाने के लिए अंततः लेखक को प्रेरित, बल्कि विवश करता है। अपने इर्द-गिर्द लिखी जा रही कहानियॅ के प्रभाव में बने माहौल की गिरफ्त में आकर वह सहज ही उसमे विकसित कथा-रूढ़ियॅ का शिकार हो सकता है। आनंद ने इससे मुक्त रह कर कहानी लिखी है। वे फ़क़त रचनानुभव के आधार पर रचने वाले लेखक नहीं हैं। उनके यहाँ ताक़तवर और कमज़ोर के बीच का अंतर्विरोध भी, जो उस दौर में लिखी गयी कहानियॅ में चारित्रिक लक्षण की तरह मौजूद है,एक ख़ास तरह की संयत भंगिमा में, उनकी अपनी अनूठी कथा-शैली में और दमन के अनुभव के विविध रूपॅ की बेचैन अभिव्यक्ति में प्रकट हुआ है। इन कहानियॅ में वर्चस्वशाली शक्तियॅ के दबाव-तले कराहते निरीह-विवश पात्र हैं। वे दमन के प्रत्यक्ष सामाजिक अनुभव को व्यक्ति-चेतना के स्तर पर झेलने को अभिशप्त हैं। मगर अपने कमज़ोर होने की नियति को लेकर वे अत्यंत सजग हैं। उनके भीतर स्वभावतः गहरी विवशता का बोध भी है। सजगता और विवशता के इस द्वंद्व में उनके चरित्र आकार लेते हैं। वंचना और विस्थापन के गहरे अहसास से गुज़रते हुए तनावहीन और उन्मुक्त क्षणॅ की खोज में वे निरंतर संघर्षरत हैं। उनके भीतर प्रतिवाद की एक धीमी आँच सुलगती है, किंतु खुल कर धधक नहीं पाती। वे अपने एकांत क्षणॅ में या फिर अपनी रची हुई निजी दुनिया के भीतर कहीं किसी निरापद कोने में, अंततः इस प्रतिवाद को एक विवश स्वर दे कर रह जाते हैं।

'बैठे हुए हाथी के भीतर लड़का' कहानी में बेकरी की नौकरी करता बाल मज़दूर हो, या फिर 'घर गैराज से छोटा' का ड्राइवर जैलाल हो, 'उस बूढ़े आदमी के कमरे में' कहानी का बूढ़ा हो या 'पुल पर बगुले' की मौसी -- इन सभी पात्रअँ की दुनिया स्वायत्त नहीं है। वे अपनी दुनिया के मालिक नहीं हैं। बल्कि उस पर किसी दूसरे का वर्चस्व है। वे किसी और की इच्छा और इशारे पर अपना जीवन जीते हैं। उनकी आज्ञा ढोते हैं। उनका अपना संसार जैसे स्थगित हो चुका है और उसे फिर से हासिल करने के लिए वे निरंतर संघर्षरत हैं। आनंद के कथा-पात्रअँ का अपने संसार को पुनः पाने के लिए किया गया यह प्रयत्न 1980 के बाद लिखी गई ज़्यादातर हिंदी-कहानियअँ के भीतर सामाजिक संघर्ष में जूझते युयुत्सु कथानायकअँ के जीवन-संघर्ष से अलग नहीं है। वह उतना ही त्रासद और मार्मिक है। मगर उनका प्रतिरोध समान्तर या जनवादी कहानी के नायकअँ की तरह आक्रामक नहीं, भीतर से बेचैन और विवश प्रतिरोध है। अपनी दुरवस्था से मुक्ति पाने के लिए वे छटपटाते हैं, लेकिन विद्रोह नहीं कर पाते। कथाकार जानता है कि विद्रोह, सच पूछा जाए तो, एक नक़ली कार्रवाई होगी, जो कथाकार के मानसिक जगत में और अंततः कहानी के भीतर तो घटित होगी, वास्तविक जीवन में नहीं। आनंद की कहानियअँ में नकली और गढ़ा हुआ यथार्थ नहीं है। कहानी के यथार्थ के रूप में वहाँ अपनी सहज गति में सक्रिय और प्रवाहशील जीवन है। उसमें यथास्थिति के विरुद्ध प्रतिवाद तो है मगर वह बहुत उत्तेजक और मुखरित नहीं है। आनंद के कथा-पात्रअँ का प्रतिवाद अंतर्भूत और प्रतीकात्मक है। लेकिन कभी-कभी ऐसा भी होता है कि चरित्र स्वयं प्रतिरोध के प्रतीक बन जाते हैं, जैसे कि 'कॉलर' कहानी में। ऐसी स्थितियअँ में, जो कि आनंद के यहाँ अपवाद-स्वरूप ही हैं, कहानी का आख्यान अपनी विधागत स्वाभाविकता खोने लगता है।

अपनी आरंभिक कहानियअँ में आनंद हर्षुल अपने समय की प्रचलित कथा-विधि, कहानी के चालू मुहावरे, मानदंड और संवेदना से किसी हद तक प्रभावित अवश्य हुए, लेकिन उसकी सीमाएँ लाँघ कर उन्हअँने अपना एक निजी मुहावरा और अनूठा शिल्प भी रचा, जो सहज ही उनके कथाकार व्यक्तित्त्व की विशिष्ट पहचान बना। अभिव्यक्ति के स्तर पर तमाम रचाव-सधाव के बावजूद आनंद की आरंभिक कहानियअँ में कथ्य का नवाचार या उसके प्रति नये दृष्टिकोण का उभार यद्यपि सीमित रूप में मिलता है, मगर फिर भी उसकी ओर प्रेक्षकअँ का ध्यान आकृष्ट हुआ तो संभवतः इसलिए कि बिलकुल नई तरह की शिल्पविधि और प्रयोगधर्मिता से उनका कथ्य भी सहसा आलोकित हो उठा। 'बैठे हुए हाथी के भीतर लड़का' संग्रह की कहानियअँ में वस्तुतः कथ्य या विषयवस्तु का नयापन नहीं था, उसका स्वरूप बहुधा उस दौर की कहानियअँ में प्रचलित शोषक-शोषित-द्वैत के दायरे में ही विकसित हुआ था । यह तत्कालीन कथात्मक यथार्थ के भीतर विकसित रूढ़ि थी, जो आनंद की कथा-सम्वेदना को भी कमोबेश नियंत्रित कर रही थी। मगर तब भी आनंद के कथा-चरित्रअँ की विशेषता यह थी कि वे उस दौर की कहानियअँ से प्रभावित हुए बिना स्वतंत्र रूप से विकसित हो रहे थे। वे अपना मॉडेल स्वयं थे। उस दौर के ज़्यादातर कथाकार जहाँ विचार के स्तर पर यथार्थ का सामना कर रहे थे, या विचारधारा की परिधि के अंदर उसे निर्मित कर पा रहे थे, वहीं आनंद उसे अनुभूति के स्तर पर स्वायत्त कर रहे थे । अलबत्ता उनके यहाँ शिल्प का नवाचार अवश्य मुखर है। उनके कथा-चरित्रअँ का वैशिष्ट्य उनकी वध्यता और निरीहता में है। वे तब की दीगर लेखकअँ की कहानियअँ में मौजूद जन-संघर्षों के उद्धत-आक्रामक नायकअँ से न सिर्फ़ अलग, बल्कि उनके प्रायः प्रतिलोम हैं। उनकी निरीहता और विवशता बाध्य करती थी कि दमनकारी शक्तियअँ की आक्रामकता से बचने के लिए वे आत्म-दमन का रास्ता अपनाएँ। आत्म-दमन के घटाटोप में घिरे आखिर वे अपने 'उन्मुक्त क्षणअँ' की खोज के लिए बराबर छटपटाते रहे। यही उनकी नियति थी। वे इन क्षणअँ को पाने की स्पृहा में अपना जीवन जीने के लिए मानो अभिशप्त थे। उनकी लालसा में इन्हीं छोटे-छोटे 'उन्मुक्त क्षणअँ' की दमक शेष रह गई थी ।

।। चार ।।

'उन्मुक्त क्षणअँ की खोज' और उसमें अपनी 'स्वतंत्रता अर्जित करने की आकांक्षा' आनंद हर्षुल के दूसरे कथा-संकलन 'पृथ्वी को चंद्रमा' की कहानियअँ में अपेक्षाकृत मुखर और कलात्मक ढंग से व्यक्त हुई है। यूँ कहें कि इस संग्रह की कहानियअँ में 'उन्मुक्त क्षणअँ की खोज' ही दरअसल केंद्रीय थीम है। आनंद ने इस व्याकुल आकांक्षा को यहाँ एक नाम दिया है -- सुख। यहां अपने छोटे-छोटे सुखअँ को पाने के लिए तड़पते हुए पात्र हैं -- भीतर से आविष्ट और गहरी संवेदना से भरे हुए। अकारण नहीं है कि इस संग्रह की कहानियअँ में नैरेटर और पात्र दोनअँ ही सुख की इस आकांक्षा को

बार-बार व्यक्त करते हैं। अतिशयोक्ति नहीं होगी अगर कहा जाए कि सुख को पाने की यह आकांक्षा इन कहानियअॅ में जैसे आद्यंत प्रतिध्वनित होती है। उदाहरण के तौर पर कुछ कहानियअॅ के अंश यहाँ उद्धृत हैं :

' उन्हअॅने खिड़की खोली। हल्के नीले रंग का लंबा-चौड़ा विस्तार सामने था -- पारे की तरह दमकता। वे देखते रहे। सुख दमक रहा था। हवा आती रही और उनकी देह को सहलाती, कमरे के भीतर समाती रही। हवा का चेहरे को छूना उन्हें अच्छा लगता रहा। उन्हअॅने अपनी आँखें बंद कर लीं कि नीले पानी से आती नीली हवा के ठंडे स्पर्श को गहरे तक महसूस कर सकें। वे सुख बटोर रहे थे और वह धीरे धीरे उनके भीतर जमा हो रहा था। सुख ऐसी चीज़ है जिससे मन नहीं भरता और ऊब नहीं होती। बस...जीने का भ्रम होता है। वे उन लोगअॅ में थे जिन्हें दुख सोचना होता था। अगर आप सुखअॅ से घिरे रहे तो दुख को सोचना मुश्किल और मज़ेदार दोनअॅ होता है।'

(बचा हुआ राजा)

'अचानक उन्हें लगा कि सुख में सुराख़ हो गया है। उनके और सुख के बीच जैसे कोई आ गया था।'

(बचा हुआ राजा)

'कबूतर मुझे सुख ही देते हैं। कम से कम दुखी नहीं करते। इतना लहलहाता और फड़फड़ाता जीवन और कहाँ है? कभी-कभी मैं सोचता हूँ, कबूतरअॅ के पास कुछ और रंग होते, मसलन कुछ चटक रंग जैसे लाल पीला, या फिर गुलाबी, नीला, तो कितना अच्छा होता। इनके पास ज़्यादा रंग नहीं होते। रंग होते तो इनके दिन दिन सुख के दिन होते। सुख का कोई रंग नहीं होता। सुख पारदर्शी होता है।'

(कबूतर)

'तीन सब्जियअॅ के साथ रोज खाने वाले के लिए किसी दिन खाने में एक सब्जी का होना उसका दुख हो सकता है पर प्याज और मिर्च के साथ रोटी खाने वाले के लिए रोटी के साथ एक सब्जी शुभ होती है।'

(कबूतर)

'मैं सुख को छूना चाहता हूँ।' मेरे मुंह से अचानक निकला, जबकि 'सुख' की जगह मुझे शब्द 'कबूतर, कहना चाहिए था।'

(कबूतर)

'बस अब और नहीं, मैं सुख से लबालब हूँ, मैं ज़रा भी हिला तो वह छलकने लगेगा।'

(कबूतर)

'स्त्री के लिए शून्य में चले जाना सुख है कि यह कमरे की यातना से बाहर होना है।'

(दृश्य से बाहर)

'एक दिन मेरी इच्छा हुई कि मैं उड़ती चिड़िया देखूँ, कोई रंगीन खूबसूरत चिड़िया देखने की उम्मीद मैं नहीं लगाया था। मैं बस चिड़िया देखना चाहता था, आसमान में उड़ती। तुम विश्वास नहीं करोगे कि मैं सुबह से शाम तक भटकता रहा, इमारतअॅ की तरह सिर उठाए, इमारतअॅ के बीच आसमान की पट्टियअॅ में झाँकता। पर मुझे एक चिड़िया नहीं दिखी। एक भी नहीं, जैसे उन्हें पता हो कि मैं उन्हें देखने निकला हूँ और वह गायब हो गई। तो आजकल मैंने आसमान की ओर देखना छोड़ दिया है। आसमान को न देखो तो चिड़िया देखने की इच्छा भी नहीं होती और यह शहर किस साले को इतनी फ़ुर्सत देता है कि वह आसमान देख सके?'

(महानगर में गिलहरी)

'मैं उन्हें सुनती हूं और दुखी होती हूँ । और बरसअॅ से मैं दुख सुनती आ रही हूँ। मैं सुख भी सुनना चाहती हूँ, चाहे वह कुछ शब्दअॅ में ही सिमट आया हो। हजार शब्दअॅ के बीच दो शब्द ही सुनने मिले। पर सुख के दो शब्द तो हअॅ।'

(पृथ्वी को चंद्रमा)

"यह सुख होगा। खोल दो दरवाजा।' कुर्सी पर बैठी मोटी स्त्री ने कहा। उसका सिर अब भी कुर्सी की पीठ पर टिका हुआ था। दरवाज़े की आहट को उसके सिर ने हल्के से घूम कर देखा भर था।"

आरंभिक कहानियॅ में विवशता और वध्यता के जिस दायरे में कथा-चरित्रॅ का विकास हुआ था, प्रभु-वर्ग के दमन और दबाव के आगे अपने उन्मुक्त क्षणॅ को पाने की उनकी ललक उसका स्वाभाविक परिणाम थी। 'पृथ्वी को चंद्रमा' तक आकर यह ललक कथा-पात्रॅ की वध्यता और विवशता की सीमाओं का विस्तार करती है,और किंचित रूपांतरित होकर उनकी अबोधता में प्रकट होती है। 'पृथ्वी को चंद्रमा' की कुछ कहानियॅ में ऐसे जीवंत चरित्र हैं, जिनकी मासूमियत सहज ही ध्यान आकर्षित करती है। ऐसे चरित्र वास्तविक जीवन में निरंतर विरल होते जा रहे हैं, इसलिए अपने-आप में चतुर-चालाक दुनिया का स्वाभाविक प्रतिवाद मालूम पड़ते हैं। वे कामयाबी की होड़ में पिछड़ते-पराभूत होते पात्र हैं। 'बचा हुआ राजा' कहानी इस वास्तविकता को बेहतर तरीक़े से व्यक्त करती है।

'बचा हुआ राजा' कहानी में क्रूरता और अबोधता के बीच का द्वंद्व समकालीन लोकतंत्र के भीतर मौजूद अवशिष्ट सामंती संस्कारॅ की मूलप्रवृत्यात्मक (इंस्टिन्क्टिव) उपस्थिति और उसके बरअक्स मानवीय संवेदनशीलता की सहज उठान में और उनके बीच संघर्ष में चरितार्थ हुआ है। शिव और अशिव के सनातन द्वंद्व या राम और रावण के प्रवृत्तिगत संघर्ष में आज पारंपरिक काव्य-न्याय अंततः उलट गया है। इसलिए अचरज नहीं कि आज अशिव की विजय अथवा शिव का पराभव अप्रत्याशित नहीं मालूम पड़ता। मानवीय अबोधता, सचाई और खरेपन की पराजय में आज का सत्य निहित है। यही नये दौर का काव्य-न्याय है। 'बचा हुआ राजा' कहानी इसे ही रूपायित करती है। यह आज का नया यथार्थ है, जिस पर मनुष्य के आदिम संवेग भारी पड़ने लगे हैं। तात्पर्य यह कि उसके 'सामाजिक' पर उसका 'मनोगत' हावी है। 'बचा हुआ राजा' मानवीय विवेक-दृष्टि को पछिया कर हिंस्र आदिमता के अपसरण की कहानी है। यह अबोध मानवीयता के क्षरण को विषय बनाती है, जिसकी उपस्थिति हिंसा और हृदयहीनता से भरे इस निष्ठुर समय में निश्चय ही महत्त्वपूर्ण है। मनुष्य की बुनियादी प्रकृति में मौजूद संवेदनशीलता पर मँडराते ख़तरे की ओर 'पृथ्वी को चंद्रमा' संग्रह की कहानियाँ मार्मिक ढंग से संकेत करती हैं।

।। पाँच ।।

निश्छलता और बेबसी से उत्पन्न संवेदना का कथात्मक विस्तार 'अधखाया फल' संग्रह (2009) की कहानियॅ में भी दिखाई देता है। यहाँ उसकी नई दिशाएँ प्रकट होती हैं और भिन्न आयाम खुलते हैं। सूक्ष्म विवरणॅ में सधी काव्यात्मकता के साथ सघन पाठ में रची गई कहानियाँ इस संग्रह में भी हैं, जिनमें वर्चस्व और प्रभुता की दुर्दांत उपस्थिति के और मानवीय संवेदना के विघटन के अनेक चित्र हैं। 'यह जो दुर्गंध है' कहानी के रामशरण जी अथवा 'उस स्त्री का पति' कहानी के पति को लें तो वे घर-परिवार के आत्मीय दायरे के भीतर विकसित हो चले संवेदनात्मक अपघटन और अकल्पनीय निष्ठुरता के शिकार चरित्र हैं। उनकी वध्यता और विवशता एक स्तर पर उस मानवीय अबोधपन की परिणति भी है जो परिस्थितिवश या एक ख़ास क़िस्म की नैतिक स्थिति के चलते उन्हें स्वतः प्राप्त हुआ है। ऐसे चरित्र आनंद के पिछले दोनॅ संग्रहॅ की कहानियॅ में भी मौजूद हैं। अंतर सिर्फ़ यह है कि उनकी प्रारंभिक कहानियॅ में जहाँ दबे-कुचले और दमन के शिकार चरित्रॅ के भीतर अपनी वर्गीय स्थिति के चलते किसी हद तक असंतोष और प्रतिवाद की चेतना मौजूद थी, वहीँ 'अधखाया फल' तक पहुँच कर उनके चरित्रॅ में प्रतिरोध-चेतना लगभग समाप्त हो गयी और वे निर्बोध-लाचार पात्र बन कर रह गए। विलगाव की सामाजिक प्रक्रिया किस क़दर घातक रूप अख्तियार कर सकती है, यह इन कहानियॅ में स्पष्ट है। क्या ऐसा नहीं लगता कि 1980 के बाद, जब आनंद की प्रारंभिक कहानियाँ प्रकाशित हुई थीं, बुद्धिजीवियॅ और संस्कृतिकर्मियॅ के चिंतन-संसार में सामाजिक क्रांति की सम्भावना और वर्गविहीन समाज की स्थापना का स्वप्न सुगबुगा रहा

था, इसलिए साहित्य-परिदृश्य में भी उसका प्रभाव बहुत हद तक सक्रिय था और इसके फलस्वरूप कहानियॅ में ऐसे पात्र सहज ही मिल जाया करते थे जो यथास्थिति के ख़िलाफ़ प्रतिरोध की सजग प्रतिक्रिया प्रकट करते थे? इस प्रतिवादी चेतना का, बाद के दौर के सामाजिक-आर्थिक परिदृश्य में, उदारवादी आर्थिक नीतियॅ के अपनाए जाने के कारण, मध्यवर्गीय उपभोक्ता-संस्कृति में बड़े पैमाने पर स्खलन होने लगा। इसके चलते धीरे-धीरे प्रतिवाद पहले औपचारिक कर्म में अपघटित हुआ, फिर शनैः शनैः वह एक क़िस्म की निरुपायता और सामाजिक निर्लिप्तता में विसर्जित हो गया। यहीं घनघोर उपभोग-वृत्ति ने मध्यवर्गीय बोध को नियंत्रित करना शुरू किया और अंततः प्रतिरोध की धार को पूरी तरह से नहीं तो बहुत हद तक कुण्ठित कर दिया।

आनंद के पहले कहानी-संग्रह 'बैठे हुए हाथी के भीतर लड़का' में संकलित कहानियॅ को ध्यान से पढ़ें, तो यह देख पाना मुश्किल नहीं होगा कि अपनी परिस्थितिगत बेबसी के बावजूद ज़्यादातर कहानियॅ में दमित पात्र यथा-अवसर, और परोक्ष रूप से ही सही, प्रतिवादस्वरूप अपनी आवेश-भरी प्रतिक्रिया ज़रूर प्रकट करते हैं। कथाकार की पक्षधरता भी यहाँ प्रकट है। मगर दूसरे संग्रह 'पृथ्वी को चंद्रमा' में प्रतिवादी चेतना, और साथ ही पक्षधरता भी कमज़ोर पड़ गयी है, जबकि 'अधखाया फल' की कहानियॅ में या तो प्रतिरोधहीन लाचार चरित्र हैं, या फिर निर्बोध प्रेम की सम्वेदना का उत्सव मनाते और उसमे आकंठ डूबे पात्र हैं। वे प्रेम के सौन्दर्य को भावात्मक गहराइयॅ तक महसूस करते, प्रेम की विपुल सम्पदा को अपने भावजगत में सहेजते चरित्र हैं। कभी प्रेम में धोखा खाते, फिर भी उसके जल में निमग्न हैं। यहाँ प्रेम और उसके रागात्मक अनुभव की बहुविध छवियाँ, रूप-रंग और आस्वाद हैं -- रोमानी उमंग, उल्लास, दुःख और वंचना के बोध से लेकर उसकी आतंरिक समृद्धि, औत्सुक्य और भावात्मक उत्तेजना तक। आनंद ने प्रेम की संवेदना को उसकी समूची ऐन्द्रिकता और उत्ताप में रचा है। प्रेम के मर्म को वे उसी तन्मयता और आंतरिक विकलता के साथ सिरजते हैं, जिस तरह अभाव, वंचना और उत्पीड़न के अनुभव को।

दिलचस्प यह है कि दोनॅ तरह के अनुभवॅ को संवेदनात्मक रूप से प्रभावी बनाने और उन्हें उत्कट रूप देने के लिए वे ठीक उनके साहचर्य में मनुष्यता की निर्बोध छवियॅ का सृजन करते हैं। इन छवियॅ के साथ उनकी पृष्ठभूमि में प्रकृति की छवियाँ और दृश्यावली भी वे रचते हैं, और उसकी ऐन्द्रिकता का विस्तार अपने चरित्रॅ के मनोजगत के भीतर तक सम्भव करते हैं। इस तरह की युक्ति अपनाने से 'अधखाया फल' संग्रह की कहानियॅ में विलक्षण चित्रात्मकता उत्पन्न हुई है। ऐसी कहानियाँ पेन्टिंग की-सी विवरणात्मक बारीक़ी के साथ दृश्यॅ और स्थितियॅ के बीच संतुलन क़ायम रखते हुए अपने कथ्य को रचती हैं। इस पद्धति से जो चाक्षुष प्रभाव उत्पन्न होता है, उससे कहानियॅ में चित्र या फ़िल्म की-सी गत्यात्मकता निर्मित होती है। इसके साथ दृश्य-बिम्बॅ का निरंतर सृजन होता रहता है। लेखक की क़लम मानो कैमरे का काम करने लगती है। यह आनंद का विशिष्ट कथा-शिल्प है। वे कहते कम, दिखाते ज़्यादा हैं। अपनी कहानियॅ में, सच पूछा जाए तो वे काव्य-दृश्य रचते हैं। इन काव्य-दृश्यॅ में प्रकृति और परिवेश की अत्यंत सघन-सान्द्र उपस्थिति है जो कभी-कभी इतनी मुखर हो उठती है कि स्वयं प्रकृति ही कहानी के चरित्र की तरह जान पड़ती है। आख्यान यहाँ यद्यपि मंथर गति से अग्रसर होता है, मगर उनके दृश्य-बिम्बॅ में संवेदना का कम्पन साफ़ तौर पर महसूस होता है। ये विलम्बित ठहराव की कहानियाँ हैं। इनमें मनुष्य की पदार्थमय उपस्थिति और उसकी प्रामाणिक छवि मूर्त्त होती है।

इन कहानियॅ में दृश्य-बिंब की गत्यात्मकता को समझने के लिए एक उदाहरण यहाँ द्रष्टव्य है --

'पृथ्वी पर यह जगह ऐसी थी, जैसे छोटी-छोटी पहाड़ियॅ का गुच्छा हो। पहाड़ियाँ एक-दूसरे को छूते खड़ी थीं। एक पतली नदी पहाड़ियॅ के बीच रास्ता निकाल टेढ़ी-मेढ़ी हो कर बह रही थी। दूर से देखो तो नदी टुकड़ॅ में दिख रही थी। कहीं किसी पहाड़ी के पीछे ग़ायब, तो कहीं किसी पहाड़ी के सामने नीली चमकती-सी। पहाड़ियॅ पर हरा रंग बिछा था साँवले और भूरे धब्बॅ के साथ। साँवले धब्बे चट्टानॅ के थे और भूरे धब्बे मिट्टी के। हरे धब्बॅ में पेड़ थे, जो फल रहे थे फल थे जो पक रहे थे, फूल थे जो खिल रहे थे, पत्तियाँ थीं जो हरी हो रही थीं, जड़ें थीं जो पहाड़ी से बस पेड़-पौधॅ के हिस्से का जीवन खींच रही थीं, झोपड़ियाँ थीं--हर पहाड़ी पर दो-तीन, उससे ज़्यादा बिल्कुल नहीं थीं। झोपड़ियॅ के आसपास पेड़ इतने ज़्यादा थे--जैसे झोपड़ियॅ को घेरे खड़े हॅ, कि जैसे झोपड़ियॅ के पहरे पर हॅ।'

इस तरह के चाक्षुष विवरणॅ से कहानी में दृश्यात्मकता ही नहीं, स्पष्ट रूप से एक क़िस्म की काव्यात्मक व्यंजना भी उत्पन्न होती है, जो उसे संवेदनात्मक और कलात्मक ढंग से सौष्ठवपूर्ण स्वरूप देती है। यह कथाकार की संवेदनशीलता, सूक्ष्मबोधी प्रेक्षणशीलता और ऐन्द्रिक सजगता को सूचित करता है। इससे उनके विवरणॅ में बारीक़ी,

विश्वसनीयता और चित्रात्मकता आती है। आनंद एक चित्रकार की तरह स्थितियॅ और दृश्यॅ को प्रामाणिक विवरणॅ में सँजोने के लिए उन्हें रंगॅ और रेखाओं की बारीकियॅ में पकड़ते हैं। यह शिल्प-कौशल उन्हॅने अपने भाषिक सामर्थ्य और ऐन्द्रिकता के ज़रिए विकसित किया है।

'अधखाया फल' की कहानियॅ में आनंद का कथा-शिल्प और अधिक निखरा हुआ है। पहले कथ्य के स्तर पर जो किंचित अनगढ़ता थी और ज़रा-सा कच्चापन जो आरंभिक कहानियॅ में था, यहाँ छँट गया है। सधे हुए हाथॅ से आनंद कथ्य को सँजोते हैं। विवरण की बारीकियॅ के साथ दृश्य को रचने में वे कल्पनाशीलता का इस्तेमाल करते हैं। दृश्य के उपकरणॅ को सजीव करते हैं और एक नए संयोजन में उन्हें सँवारते हैं। इस प्रक्रिया में कभी-कभी दृश्य किंचित अमूर्तन की ओर भी बढ़ते हैं, लेकिन आनंद उन्हें अमूर्त्त नहीं होने देते। एक प्रकार के संतुलित और संयत अमूर्त्तीकरण के ज़रिए उसे प्रभावी बनाते हैं। दृश्य रचते हुए उसमें कल्पना के विनियोग का एक अत्यंत मार्मिक उदाहरण 'यह दुर्गंध जो है कहानी' के अंत में देखा जा सकता है जहाँ नैरेटर कथानायक रामशरण जी की मृत्यु के बाद टिप्पणी करता है--

' तो रामशरण जी की मृत्यु के चौदहवें दिन से दुर्गंध फिर बेटे और बहू के पीछे है--जिसे वे रामशरण जी की दुर्गंध मानते हैं और जो अब भी उनकी मृत्यु के बाद मौजूद है। रामशरण जी के बेटे और बहू उस दुर्गंध से कहीं भाग नहीं पा रहे हैं । इस बीच सात दिनॅ के लिए वे पहाड़ पर गए तो दुर्गंध भी उनके साथ पहाड़ चढ़ गई और वे तीसरे दिन ही पहाड़ से लौट आए.....'

शुरुआती दौर में आनंद की कहानियॅ में जो प्रतिरोध-चेतना मौजूद थी और जो उस वक़्त किसी हद तक मुखर मालूम पड़ती थी, वह अब अपेक्षया कलात्मक और सूक्ष्म हुई है। वह अब आख्यान की परिणति में नहीं, बल्कि उसकी प्रक्रिया में-- कहानी कहने के दौरान अलग-अलग स्थलॅ पर यथावसर-- प्रकट होती है। परवर्त्ती कहानियॅ में प्रतिरोध की चेतना क्रमशः क्षीण भी हुई है, इसलिए कमज़ोर और ताक़तवर का प्रचलित ध्रुवीकरण अब समाप्त हो चुका है,और कहानी के विषय भी अब बदल चुके हैं। इसी का परिणाम है कि 'अधखाया फल' की कहानियॅ में आख्यान-पद्धति दो विरुद्धॅ के द्वंद्व अर्थात शोषक-शोषित अन्तर्विरोध की चालू थीम पर ठहरी नहीं रह जाती, बल्कि उससे अपसरित होकर प्रेम की संवेदना पर एकाग्र होने लगती है। इस संग्रह में दोनॅ तरह की कहानियाँ हैं-- एक तरफ़ 'सवारी गाड़ी के दृश्य'-जैसी कहानी है, जिसमें कथा-पात्रॅ की वर्गीय अवस्थिति का परीक्षण निम्नतर आर्थिक हैसियत के लोगॅ की जीवन-स्थितियॅ के साथ तुलना के ज़रिये, श्रेष्ठता-बोध के मध्यवर्गीय मनोविज्ञान की सीमाओं में घटित होता है और वर्गभेद या श्रेणीभेद की चेतना किसी हद तक क़ायम रहती है। दूसरी तरफ़ 'अधखाया फल' या 'दुपहर का बगीचा'-जैसी कहानियाँ हैं, जहां यह चेतना पूरी तरह विलीन होजाती है। इन कहानियॅ में प्रेम का द्वन्द्व और उसकी विविध व्यंजनाएँ हैं। सच कहा जाए तो 'अधखाया फल' की कहानियॅ का मुख्य स्वर प्रेम है -- उज्ज्वल प्रेम की गतिशील छवियाँ और उसका आंतरिक द्वन्द्व । इनमें आनंद का रचना-कौशल ज़्यादा प्रत्यक्ष हो क़रर खुलता और खिलता है। आरंम्भिक कहानियॅ की बनिस्बत इनमें आख्यान थोड़ी अस्पष्टता की ओर अग्रसर हुआ है (यद्यपि इससे कहानी की कलात्मकता पर बहुत सकारात्मक असर भी हुआ है) मगर संवेदना अधिक उत्कट, सघन और मुखर हुई है।

ज़ाहिर है, आनंद हर्षुल की पहचान एक ऐसे कथाकार की है, जिसने प्रचलित धारा से अलग हटकर अपने रचनात्मक वैशिष्ट्य को अर्जित करने और एक अलग कथा-शैली विकसित करने का निरंतर उद्यम किया है। यही वजह है कि उनकी कहानियाँ परिदृश्य में सर्वथा भिन्न पहचान के साथ उपस्थित दिखाई देती हैं।

कर्मचारी नगर सोसाइटी के पास,
क्वार्टर नम्बर ए-63 के पीछे,
सिकोलाभाठा, दुर्ग, छत्तीसगढ़ 491001
मो 09981064205